उल्लेखनीय सेवा करेगा। दुकानदार ग्राहक की सेवा करता है और कारीगर पूँजीपति की। पूँजीपति कुटुम्ब की सेवा में तत्पर है और सनातन जीव के सनातन स्वरूप के अनुसार परिवार राजा का सेवक है। इस प्रकार जीवमात्र अन्य जीवों की सेवा कर रहा है, कोई भी इस सिद्धान्त का अपवाद नहीं है। अतः यह निष्कर्ष सुगमता से निकाला जा सकता है कि सेवाभाव जीव का नित्य सहचर है; वस्तुतः सेवा करना ही जीव का सनातन धर्म है।

तथापि देशकाल के अनुसार मनुष्य अपने को हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध आदि मत-मतान्तरों का अनुयायी मान लेता है। ये सभी उपाधियाँ सनातन धर्म से इतर हैं। एक हिन्दु मत बदलकर मुस्लिम बन सकता है, मुस्लिम अपना मत त्याग कर हिन्दु मत अंगीकार कर सकता है। इसी प्रकार ईसाई आदि भी मत-परिवर्तन करने में स्वतन्त्र हैं। परन्तु किसी भी परिस्थिति में, दूसरों की सेवा करने के सनातन स्वरूप (धर्म) में अन्तर नहीं आता। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी किसी न किसी के सेवक हैं। अस्तु, अपने को किसी सम्प्रदाय विशेष का मानना अपने सनातन धर्म में अनास्था का द्योतक है। वास्तव में सेवा करना ही सनातन धर्म है।

यथार्थ में श्रीभगवान् से हमारा सम्बन्ध सेवा भाव का है। श्रीभगवान् परम भोक्ता हैं और हम सब जीव उसके सेवक हैं। हमारा सृजन वस्तुतः उनके उपभोग के लिये हुआ है, अतः श्रीभगवान् के साथ उस सनातन आनन्दास्वादन में भाग लेने से हम सुखी हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। उदर से सहयोग किये बिना शरीर का कोई भी अंग सुखी नहीं हो सकता। उसी भाँति जीव के लिये भी स्वतन्त्र रूप से सुखी होना सम्भव नहीं है। प्रकारान्तर से, श्रीभगवान् की प्रेममयी सेवा से विमुख रह कर जीव सुखी नहीं हो सकता।

भगवद्गीता में देवसेवा अथवा देवोपासना का अनुमोदन नहीं किया गया है। सातवें अध्याय के बीसवें श्लोक में उल्लेख है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियमास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।।

'जिनका चित्त विषय वासना से दूषित है, वे मनुष्य ही देवताओं की शरण में जाते हैं और स्वभाव के अनुसार उपासना के विधि-विधान का परिपालन करते हैं।' यहाँ सुबोध रूप में बताया गया है कि कामी मनुष्य ही भगवान् श्रीकृष्ण के स्थान पर देवताओं की उपासना करते हैं। 'कृष्ण' नाम साम्प्रदायिक नहीं है। 'कृष्ण' नाम का अर्थ है परमोच्च आनन्दरस। शास्त्रों से सिद्ध है कि श्रीभगवान् रसराज हैं, अर्थात् समग्र आनन्द के आगार हैं। हम सभी आनन्द का अन्वेषण कर रहे हैं: **आनन्द-मयोऽभ्यासात्**। (ब्रह्मसूत्र १.१.१२) जीव, जो श्रीभगवान् की भाँति ही पूर्ण चेतन हैं, सुख (आनन्द) चाहते हैं। श्रीभगवान् तो नित्य आनन्मय हैं ही, अतः उनसे सहयोग करके और उनका संग करने पर जीव भी आनन्द को प्राप्त हो जाते हैं।

अपनी आनन्दमयी वृन्दावन लीला के रस का परिवेषण करने के लिए